भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, भारतीय भाषा और समाचार पत्र।

सुशील कुमार,[1] प्रो0 (डॉ0) राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव[2]

1. शोध प्रज्ञ, इतिहास विभाग,
जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सारण बिहार।

2. (सेवानिवृत) प्राचार्य, एच, आर, कॉलेज, अमनौर, सारण, बिहार।

सारांश

प्रस्तुत शोध कार्य स्वाधीनता आन्दोलन और समाचार पत्र से संबंधित है। पाश्चात्य ज्ञान के लिए बोलचाल में प्रचलित हिन्दी भाषा की पैरवी कई देशों के क्षेत्रों से की जा रही थी लेकिन अंग्रेजी हुकूमत ये कदापि नही चाहती थी कि स्कूलों या कालेजों में हिन्दी भाषा प्रचलित हो। लेकिन कुछ अंग्रेजी सरकार के बड़े अधिकारी भारतीय भाषा के पक्षधर भी थे तथा कुछ अधिकारी कट्टर विरोधी भी थे इन अधिकारियों में खुब बातों का द्वन्द्व युद्ध भी हुआ करते थे। ये अंग्रेजी अधिकारी भारतीय पत्र–पत्रिकाओं पर भी बहुत पैनी नजर रखते थें। हमेशा पत्रों के संपादकों पर नये नये कड़े नियम लगा दिए जाते थे जिससें संपादकों कों पत्र–पत्रिकाओं के संपादन में खुलकर सरकार के खिलाफ लिखनें की आजादी समाप्त कर दिए जाते थे फिर भी संपादक लिखते ही रहते थे। संपादकों ने बड़ी हिम्मत और बलिदान से आज हमें अंग्रेजी हुकूमत से निजात दिलाई।

भूमिका

स्वाधीनता आन्दोलन के समय पाश्चात्य ज्ञान के लिए बोलचाल में प्रचलित भाषाओं के उपयोग की पैरवी कई क्षेत्रों से की गई। जनरल कमेटी के विलसन और सेक्सपीयर जैसे कुछ सदस्य इसके पक्ष में थें। मैलकम, मुनरो और एलफिनस्टन इसका समर्थन करते थे। कलकत्ता में कुछ प्रभावशाली भारतीय नागरिकों के द्वारा स्थापित वर्नाकुलर सेमिनरी ने बेंटिक द्वारा अंग्रेजी के पक्ष में निर्णय कर लिए जाने पर भी भारतीय भाषाओं के उपयोग पर जोर दिया। यह कहा गया कि भारतीय भाषाओं के जरिये से माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा संभव है, और भारतीय साहित्य के विकास पर उसका अच्छा असर होगा। भारतीय भाषाए शिक्षा के माध्यम के रूप में चल रही थी।

यह मानते हुए कि भारतीय शिक्षकों की नियुक्ति की दृष्टि से भारतीय भाषाए के जरिए से शिक्षा अधिक सस्ती और सुविधाजनक हो सकती है, आकलैण्ड ने इस कारण इस सुझाव को मानने से इंकार किया कि'' देशी नवयुवक हमारे विद्यालयों में देशी भाषा की रचना सीखने नहीं आएगें।''

1837 में बम्बई में शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर उच्च न्यायालय के न्यायधीश, शिक्षा मण्डल के अध्यक्ष और आंग्लवादी सर एरस्कीन पेरी में तथा कर्नन जार्विस, जगन्नाथ शंकर सेठ और मण्डल के दूसरे भारतीय सदस्यों में द्वंद्व चला। जगन्नाथ शंकर सेठ ने 1847 की पहली मई को बोर्ड के सामने अपने मन्तव्य में कहा – " यदि हमारा उद्देश्य भारतीय जाति में शान का प्रचार तथा मानसिक उन्नयन है, तो मेरा यह मत है कि यह ज्ञान उन्हें उनकी भाषा में दिया जाए।'' भाषा और किस उपाय से हम यह आशा कर सकते है कि हम कभी स्त्रियों में शिक्षा का व्यापक प्रचार करेंगे? मैं फिर कहता हूँ कि मैं अंग्रेजी की शिक्षा को किसी भी प्रकार निरूत्साहित नहीं करना चाहता, पर मैं विश्वास करता हूँ कि यह आम आदमी के पहुँच के बाहर है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि भारत की बोलचाल की भाषाएं उपयोगी ज्ञान के संचार के माध्यमों के रूप में अंग्रेजी से कुछ दृष्टियों की श्रेष्ठ है। यह मामला सरकार के सामने पेश हुआ, जिसने यह आदेश दिया कि कॉलेज शिक्षा में अंग्रेजी ही एक मात्र माध्यम हो और मातृभाषा माध्यमिक शिक्षा में माध्यम हो। इस प्रकार बोल–चाल की भाषाओं का पक्ष कुछ कमजोर पड़ गया और अंग्रेज उच्चत्तर शिक्षा के माध्यम के

रूप में स्वीकृत हुई। यह कहा गया कि अंग्रेजी नें विभिन्न भाषायें बोलने वाले भारतीयों को एक समान्य भाषा दी, और इस प्रकार भारत के सारे भागों में परस्पर विचार विनिमय का एक साधन प्राप्त होता था और इस प्रकार भारतीय भाषाऐं भारतीय एकता के विकास तथा भारतीय राष्ट्रीयता की भावना को बढ़ाने में सहायक होती है।

प्रशासन की सुविधा के कारण सरकार ने माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया और कुल मिलाकर बहुसंख्यक जनता की शिक्षा की अवहेलना की।

ऐसे सिद्धान्तों के प्रभाव तथा यथेष्ट धन के अभाव के कारण कम्पनी ने एलफिनस्टन और मुनरों की जनशिक्षा योजनाओं को नामंजूर कर दिया। 1823 के अपने मंतव्य में एलफिनस्टन ने स्कुली शिक्षा के विस्तार का प्रस्ताव रखा था ताकि ''देशी लोगों के निम्न वर्ग के इन विद्यालयों में शिक्षा का लाभ मिलें। मुनरों ने कहा था – ''यदि हम जनता को शिक्षा देने का संकल्प करें, यदि हम अपनी योजनाओं पर कायम रहें और विद्यालयों को तहसीलों तक सीमित न रखें, बल्कि छोटे इलाकों में भी उनकी संख्या बढ़ाए, तो मुझे विश्वास है कि अन्त में हमारे प्रयास सफल होंगे।'' गवर्नर जनरल लार्ड हेस्टिंग्स ने 1815 में लिखा–देशी सरकारें सार्वजनिक शिक्षा के महत्व के प्रति उदासिन नहीं थी यही इससे प्रमाणित होता है कि पाठशालाओं और विद्यार्थियों के लिए काफी जमीने तथा वृत्तियाँ दी जाती थी। पर ब्रिटिश सरकार ने पहले से चली आती हुई संस्थाओं की जिस प्रकार उपेक्षा की उसका नतीजा यह हुआ कि शिक्षा के लिए प्रदत जमीन लोगों की निजि सम्पति बन गई। दूसरी बात यह है कि चूकिं सरकार ने जनशिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ली जो केवल मातृभाषा के जरिए ही दी जा सकती थी, इन भाषाओं के विकास की ओर ध्यान देने का कोई आग्रह नहीं रहा विशेष कर जब बेटिंक ने यह फैसला किया और मैटकाफ तथा आकलैंड ने इसका समर्थन किया कि माध्यमिक और कॉलेजी शिक्षा में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रहेगी। हार्डिंग द्वारा प्राथमिक शिक्षा को आगे बढ़ाने का प्रयत्न सफल नहीं रहा।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आरेख विश्लेषणात्मक एवं वर्णात्मक प्रकृति का है। शोध कार्य के लिए द्वितीयक स्त्रोतों का उपयोग किया गया है। इसके लिए मुख्यतः इन्टरनेट से प्राप्त सामग्रियों, प्रकाशित ग्रंथ, पत्र–

पत्रिकाओं में छपे विवरण, निबंध एवं लेख तथा विभिन्न शोध–ग्रंथों को अध्ययन का आधार बनाया गया है।

तथ्य विश्लेषण

लोगों में खबरों को जानने की इच्छा बढ़ रही थी और यह इच्छा केवल समाचार पत्रों से ही प्राप्त हो सकती थी। सरकार के तौर–तरीकों और नीतियों के संबंध में भारतीय जनमत के सामने आने के लिए कोई वैधानिक साधन या राजनैतिक संगठन न होने के कारण समाचार पत्र ही एक मात्र साधन था। सरकार के लिए समाचार–पत्र वे साधन बन गए जिनके द्वारा जनता के अभावों, शिकायतों विचारों और आकांक्षाओं का पता लगता था। पत्रों में सरकारी नीतिओं और तरीकों के संबंध में सार्वजनिक मत व्यक्त किया जाता था और साथ भारतीयों के मन की इस शंका को भी व्यक्त किया जाता था कि ब्रिटेन के लाभ के लिए देश के हित का बलिदान न कर दिया जाए। इनसे स्पष्ट रूप से यह व्यक्त होता था कि राजनैतिक पराधीनता की स्थिति राष्ट्रीय आत्मसम्मान से बिल्कुल मेल नही खाती। अंग्रेजी समाचार पत्रों के प्रकाशन से पत्रकारिता का दौर शुरू हुआ। 1861 में टाईम्स ऑफ इंडिया की स्थापना स्टैण्डर्ड, टैलीग्राफ, कुरियर और बम्बई टाईम्स को मिलाकर हुई। पहले अंक में इसमें अपनी जरूरत सिद्ध करने के लिए यह तर्क दिया कि बम्बई बन्दरगाह के रूप में बहुत महत्वपूर्ण है और भारत की प्रधान नगरी है। ''चाहे व्यपार में हो चाहे युद्ध में। साधनों के मामले में बम्बई सम्रज्य का गढ़ और एशिया का स्वाभाविक मालखाना और राजधानी है। इस नाते बम्बई का भविष्य इतना उज्जवल है कि इसकी कल्पना भी ठीक तरह से नहीं की जा सकती। यह सम्राज्य की मुख्य नगरी है, पर इसके समाचार पत्रों की दृष्टि अबतक प्रान्तीय या संकीर्ण रही है। ' टाइम्स ऑफ इंडिया' के रूप में हम सिर्फ घटनाओं के साथ कदम मिलाकर चलने की चेष्टा कर रहे है।

स्वभाविक रूप से यह पत्र–पत्रिकाएँ शिक्षित मध्यम वर्ग के द्वारा निकाली जाती थी। उनपर इसी वर्ग का स्वामित्व होता था, उन्ही का प्रबंध होता था और उन्ही के सदस्य इसका संपादन करते थे। इनके जरिए से मध्यम वर्ग सारे देश पर प्रभाव डालने में समर्थ हुआ, और सच्ची बात तो यह है कि वह वैद्य रूप से यह दावा करने लगा कि वह सारे भारत का प्रतिनिधित्व करता

हैं। यह एक ऐसा दावा था जिसका शासक लोग बहुत जोरो के साथ विरोध करते थे। दुर्भाग्य से वस्तुस्थिति उनके विरोध में थी और पत्रों को जनमत का प्रतिनिधि न मानकर उनकी उपेक्षा करने से पत्रों का रूख और उग्र हुआ और ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता की बहुत जोरों से मांग की जाने लगी। यह मांग 19 वीं सदी में बहुत दबे स्वर में ही की जाती थी।

शायद सबसे पहला महत्वपूर्ण पत्र 'हिन्दू पैट्रियट' था जिसके पहले दो वर्षो में गिरीशचन्द्र घोष सम्पादक थे। 1855 में हरिशचन्द्र मुखर्जी इसके सम्पादक हो गये। वह निर्भीकता से बगान–मालिकों के अत्याचारों की पोल खोलने तथा सताये हुए किसानों की सहायता में लगे रहे। 1861 में उनकी मृत्यु के बाद कृष्टोदास पाल इसके सम्पादक हुए। वह अंग्रेजी शिक्षा की खास उपज थे। वह ब्रिटिश शासन से प्रशंसक थे और ब्रिटिश उदारवाद का प्रतिपादन करते थे। उनके प्रभाव में 'हिन्दू पैट्रियट' उच्च मध्यम वर्गीय बंगाली जमीदारों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। पैट्रियट पत्र के मुकाबले में गिरीशचन्द्र घोष ने 1868 में रैयतों के अनुभवों और विचारों को सामने लाने के लिए 'बंगाली' नामक पत्र का प्रकाशन शुरू किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने जो इस पत्र के लेखकों में रहे, 1879 में इस पत्र को ले लिया। और भारत का प्रमुख पत्र, सरकार का निर्भीक आलोचक और भारतीय पक्ष का अथक समर्थक बना दिया। इस प्रकार 19 वीं सदी के अंतिम चरण में भारतीय पत्रों के प्रभाव में काफी वृद्धि हुई। हर प्रान्त में भारतीय मालिकों के अंग्रेजी पत्र, अंग्रेजी पढ़े–लिखें वर्ग को समाचार और विचार देते रहें और भारत के सारे प्रान्तों के शिक्षित वर्ग को एक तरह के विचार और एक तरह की भावनाओं के बंधन में बांधते रहें। पत्रों के प्रति सरकार का रूख संदेह और नाराजगी का था। पहले सरकार ने नई प्रवृति को गम्भीरता के साथ नहीं लिया। 1885 में पत्रों के संबंध रिपोर्ट में यह बताया गया कि भारतीय पत्रों की शैली और लेख आदि आपत्तिजनक होते है, फिर भी उनका कोई महत्व नहीं है, क्योंकि उनमें समसामयिक बंगला साहित्य में प्रचलित अत्युक्तिपूर्ण शैली का ही अनुकरण किया जाता था।

'केसरी' और काल दोनों पत्रों को अपने स्वतंत्र विचार और राजनैतिक उग्रता के लिए बहुत कष्ट उठाना पड़ा। बम्बई सरकार के सचिव ने 1893 में भारतीय पत्रों पर रिपोर्ट में यह कहा कि – ''धार्मिक पुनरूज्जीवन की धारा तेजी से बह रही है और इसके साथ आवश्यक रूप से

सामाजिक संबंध कट्टु होते जा रहे हैं। 1903 में बम्बई की प्रेस रिपोर्ट में भारतीय पत्रों को इन श्रेणियों में बाँटा है :–

1. मराठी पत्र जो मुख्यत : चितपावन ब्राहम्णों के हाथों में है और ब्रिटिश शासन के प्रति शत्रुता से प्रेरित है।
2. वे पत्र जो कांग्रेस का समर्थन करते हैं और 'तरूण भारत' के राजनैतिक अधिकारों की आकांक्षा का समर्थन करते है।
3. (क) ऐसे पत्र जो नरम है और जो काफी राजभक्त है और प्रश्नों पर संयम और बिना पक्षपात के विचार करते है।
4. (ख) ऐसे पत्र जो ब्रिटिश नीति का बराबर समर्थन करते रहते हैं और सम्पूर्ण रूप से राजभक्त है।

इस रिपोर्ट में यह कहा गया कि ब्राह्मणों के पत्र यानी 'केसरी' 'काल' बहुत प्रभावशाली है और उनका प्रचार बहुत अधिक है।

'एडवोकेट' ने कांग्रेस के कार्य की प्रशंसा की और वह देश में सब तरह के उदार विचारों के पक्ष में था। भारत को एक विजित देश समझने की ऐंग्लों इण्डियन नीति की इसमें बहुत खुले शब्दों मे निन्दा की गई थी। कर्जन के वायसराय बने रहने का किसी भी पत्र ने स्वागत नहीं किया। सैनिक विभाग के उच्च पदों से भारतीयों को अलग रखे जाने को 'कट्टर साम्रज्यवाद' का नाम दिया गया।

मद्रास के अखबरों का लहजा नरम था। 'हिन्दू' और 'मद्रास स्टेंडर्ड' सबसें प्रमुख पत्र थे और अपने विचारों को संयम भाषा में रखते थें। भारतीय भाषा के पत्र इसी प्रकार आमतौर से नरम थें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत आरेख में स्वाधीनता आन्दोलन और समाचार पत्र से उद्धत है से यह निष्कर्ष निकला कि अंग्रेजी सरकार के यह नियम कानून बनाना पड़ा कि सभी 10 कक्षा तक की स्कुलों में पढ़ाई का

माध्यम हिन्दी रहेगा तथा कालेजों में पढ़ाई का माध्यम अंग्रेजी होगी। साथ ही पत्र–पत्रिकाओं के प्रति अंग्रेजी सरकार का रूख जो संदेह और नाराजगी का था वह भी समाप्त हो गया तथा पत्र–पत्रिकाओं के नियम कठोर से काफी आसान कर दिए गए। जिससे सभी पत्रों के संपादक खुलकर लिखनें लगें।

संदर्भ

1. भारत सरकार (गृह शिक्षा) भारत सचिव के डिस्पैच नं0 1,6, फरवरी, 1882
2. स्टेटमेंट एक्जिबिटिंग मारल ऐंड मेटीरियल प्रोग्रेस ऐंड कंडिशन ऑफ इंडिया 1871–72 पृष्ट. 118
3. ब्रिटिश भारत की शिक्षा पद्धति, देखिए होम डिपार्ट. (एजु.) प्रोसीडिंग्स, फरवरी, 1882 नम्बर 31–71
4. सर ए0. क्रौफ्ट, शिक्षा निदेशक, रिव्यू ऑफ एजुकेशन इन इंण्डिया इन 1886 पृ . 4
5. हाटिंगटन को रिपन का पत्र, 3 जून 1881, लूसियन बुल्फ रिचर्ड – ''लाइफ ऑफ द फस्ट मार्किवस ऑफ रिपन'' जिल्द 2, पृ. 114
6. रिपोर्ट ऑफ इंडियन एजुकेशन कमीशन' (कलकत्ता, 1883) पृ. 452

7- सर अलफ्रेड क्राफ्ट, रिव्यू ऑफ एजुकेशन इन इंडिया इन 1868 वि स्पेशल रेफरेंस टू दि रिपोर्ट ऑफ एजु. कमीशन, (कलकत्ता, 188) पृ. 31